



श्रीमद्भगवद्गीतामें योग स्वरूप विमर्श

देव प्रकाश गुजेल

एम.ए.(संस्कृत)

मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार

सारांश

गीता में योग शब्द का व्यवहार आत्मा का परमात्मा से मिलन के अर्थ में किया गया है। योग-दर्शन में योग का अर्थ 'चित्त-वृत्तियों का निरोध' है। परन्तु गीता में योग का व्यवहार ईश्वर से मिलन के अर्थ में किया गया है। गीता वह विद्या है जो आत्मा को ईश्वर से मिलाने के लिए अनुशासन तथा भिन्न-भिन्न मार्गों का उल्लेख करती है। गीता का मुख्य उपदेश योग है, इसीलिए गीता को योग शास्त्र कहा जाता है। जिस प्रकार मन के तीन अंग हैं- ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक। इन तीनों अंगों के अनुरूप गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग, और कर्मयोग का समन्वय हुआ है। आत्मा बन्धन की अवस्था में चल जाती है। बन्धन का नाश योग से ही सम्भव है। योग आत्मा के बन्धन का अन्त कर उसे ईश्वर की ओर मोड़ती है। गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति को मोक्ष का मार्ग कहा है। इस प्रकार गीता ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग का सम्भव होने के कारण योग की त्रिवेणी कही जाती है।



मुख्य बिन्दु: योग, गीता, बन्धन, आत्मा

योग का परिचय: "योग" शब्द सर्वप्रथम कठोपनिषद् (योगक्षेमाद् वृणीते 1/2/2) में ज्ञानेन्द्रियों का नियंत्रण और मानसिक गतिविधि के निवारण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जो उच्चतम स्थिति प्रदान करने वाला माना गया है। महत्वपूर्ण ग्रन्थ जो योग की अवधारणा से सम्बंधित है वे मध्य कालीन उपनिषद्, महाभारत, भगवद् गीता - 200 BCE एवं पतंजलि योग सूत्र है। (ca. 400 BCE) हैं। 'योग' शब्द 'युज समाधौ' आत्मनेपदी दिवादिगणीय धातु में 'घं प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इस प्रकार 'योग' शब्द का अर्थ हुआ- समाधि अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध है। वैसे 'योग' शब्द 'युजि'र

योग' तथा 'युज संयमने' धातु से भी निष्पन्न होता है किन्तु तब इस स्थिति में योग शब्द का अर्थ क्रमशः योगफल, जोड़ तथा नियमन होगा। योग के विषय को लोगों ने ऐसा जटिल बना रखा है कि इसका नाम ही भयंकर हो गया है। जैमिनि और बादरायण ने आरंभ में इसी कारण से अथातो धर्मजिज्ञासा और अथातो ब्रह्माजिज्ञासा कहा है। जैसे ब्रह्मोपदेश मुमुक्षुओं को और धर्मोपदेश धर्मच्छुओं को देना चाहिए, वैसे ही कर्म शास्त्रोपदेश उसी मनुष्य को देना चाहिए जिसे यह जानने की इच्छा या जिज्ञासा हो कि संसार में कर्म कैसे करना चाहिए। इसीलिए हमने पहले प्रकरण में 'अथातो' कहकर, दूसरे प्रकरण में कर्म-जिज्ञासा का स्वरूप और कर्म-योगशास्त्र का महत्त्व बतलाया है। अभ्यासात्मक योग के सब तत्वों को विचार करने से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि हठयोग यद्यपि योग का अंग अवश्य है, पर जो भी वह केवल एक अंग है, स्वयं योग नहीं। अर्थात् वह योग का एक साधन मात्र है और सो भी प्रधान नहीं। ऐसे अंग योग के आठ कहे गए हैं- (1) यम (2) नियम (3) आसन (4) प्राणायाम (5) धारणा (6) प्रत्याहार (7) ध्यान (8) समाधि। ये ही तीन प्रधान हैं। इनमें पाँच योग के बाह्य अंग हैं बाकी तीन अन्तरंग योग हैं, धारण, ध्यान, समाधि। ये ही तीन प्रधान हैं। महर्षि पातंजलि ने कहा भी है :- योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।¹ चित्तवृत्ति के निरोध से ही योग की उत्पत्ति की उत्पत्ति होती है और इसी को प्राप्ति ही योग का लक्ष्य है। व्यावहारिक रूप से योग का तात्पर्य होता है जोड़ना या बाँधना। जिस प्रकार घोड़े को एक स्थान पर बाँधकर उसकी चपलता को नष्ट कर दिया जाता है उसी प्रकार योग द्वारा मन को सीमित किया जा सकता है। विस्तार पाकर मन आत्मा को अच्छादित न करले इसलिए योग की सहायता आवश्यक भी हो जाती है। गीता में भगवान् कृष्ण ने योग की महत्ता बतलाते हुए कहा है कि यद्यपि मन चंचल है फिर भी योगाभ्यास तथा उसके द्वारा उत्पन्न वैराग्य द्वारा उसे वश में किया जा सकता है। भक्तियोग और राजयोग से ऊपर उठाकर त्रिकालयोग के दर्शन होते हैं और यही सर्वश्रेष्ठ योग है। योग-सूत्रों में वज्र इन उपदेशों को जब हम मामूली कामों में लगाते हैं और इनके द्वारा सफलता प्राप्त करते हैं, तब हमको मानना पड़ता है कि योग का सबसे उत्कृष्ट और उपयोगी लक्षण वही है जो भगवान् ने कहा है- योगः कर्मसु कौशलम् इस योग के अभ्यास के लिए प्रत्येक मनुष्य को सदा तैयार रहना चाहिए। गुरु मिलें तब तो योगाभ्यास करें ऐसे आलस्य के विचार निर्मला हैं। जो कोई कर्तव्य सामने आ जाय उसमें संयम (अर्थात् धारण, ध्यान, समाधि) पूर्वक लग जाना ही योग है। इसमें यदि कोई स्वार्थ कामना हुई तो यह योग अधम श्रेणी का हुआ और यदि निष्काम है-कर्तव्य बुद्धि से किया गया है और फल जो कुछ हो ईश्वर को अर्पित है तो यही योग उच्चकोटि का हुआ। जब अपने सभी काम इसी रीति से किए जाते हैं तो वही आदमी

¹ पातञ्जल योग सूत्र .1/2

जीवन्मुक्त कहलाता है। गीता में योग की परिभाषा योगःकर्मसु कौशलम्² की गयी है। दूसरी परिभाषा समत्वं योग उच्यते³ है। कर्म की कुशलता और समता को इन परिभाषाओं में योग बताया गया है।

योग की विभिन्न परिभाषायें -

1. पातंजल योग दर्शन के अनुसार - योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ।
अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।
2. सांख्य दर्शन के अनुसार - पुरुषप्रकृत्योर्वियोगेपि योग इत्यमिधीयते ।
अर्थात् पुरुष एवं प्रकृति के पार्थक्य को स्थापित कर पुरुष का स्व स्वरूप में अवस्थित होना ही योग है।
3. विष्णुपुराण के अनुसार - योगः संयोग इत्युक्तः जीवात्म परमात्मने ।
अर्थात् जीवात्मा तथा परमात्मा का पूर्णतया मिलन ही योग है।
4. भगवद्गीता के अनुसार - सिद्धासिद्धयो समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते । (2/48)
अर्थात् दुःख-सुख, लाभ-अलाभ, शत्रु-मित्र, शीत और उष्ण आदि द्वन्द्वों में सर्वत्र समभाव रखना योग है।
5. भगवद्गीता के अनुसार - तस्माद्दयोगाययुज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।(2/50)
अर्थात् कर्तव्य कर्म बन्धक न हो, इसलिए निष्काम भावना से अनुप्रेरित होकर कर्तव्य करने का कौशल योग है।
6. आचार्य हरिभद्र के अनुसार - मोक्खेण जोयणाओ सच्चो वि धम्म ववहारो जोगो ।
अर्थात्:- मोक्ष से जोड़ने वाले सभी व्यवहार योग है।
7. बौद्ध धर्म के अनुसार - कुशल चित्तैकगता योगः।
अर्थात् कुशल चित्त की एकाग्रता योग है।

श्रीमद्भगवद्गीता का परिचय-

महाभारत के भीष्मपर्व में भगवद्गीता का उल्लेख जिसमें अर्जुन के मोह के निवारणार्थ कृष्ण उपदेश के माध्यम से समझाते हैं जिसमें अनेक बार योग शब्द का प्रयोग किया गया है इसमें योग के प्रमुख तीन भेदों का परिचय दिया गया है।

² श्रीमद्भगवद्गीता 2/50

³ श्रीमद्भगवद्गीता 2/48

1. कर्म योग- कार्रवाई का योग। इसमें व्यक्ति अपने स्थिति के उचित और कर्तव्यों के अनुसार कर्मों का श्रद्धापूर्वक निर्वाह करता है।
2. भक्ति योग- भक्ति का योग। भगवत कीर्तन। इसे भावनात्मक आचरण वाले लोगों को सुझाया जाता है।
3. ज्ञाना योग- ज्ञान का योग - ज्ञानार्जन करना।
- 4.

श्रीमद्भगवद्गीतामें योग-

गीता में ज्ञानयोग- गीता के अनुसार मानव अज्ञानवश बन्धन की अवस्था में पड़ जाता है। अज्ञान का अन्त ज्ञान से होता है, इसीलिये गीता में मोक्ष पाने के लिये ज्ञान की महत्ता पर प्रकाश डालती है। गीता के अनुसार ज्ञान दो प्रकार के हैं-

(1) तार्किक ज्ञान - तार्किक ज्ञान वस्तुओं के बाह्य रूप को देखकर उनके स्वरूप की चर्चा बुद्धि के द्वारा करता है। बौद्धिक अथवा तार्किक ज्ञान को 'विज्ञान कहा जाता है।

(2) आध्यात्मिक ज्ञान- आध्यात्मिक ज्ञान वस्तुओं के आभास में व्याप्त सत्यता का निरूपण करने का प्रयास करता है। आध्यात्मिक ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। ज्ञानयोग की महत्ता बताते हुए गीता में कहा गया है, "जो ज्ञाता है वह हमारे सभी भक्तों में श्रेष्ठ है। जो हमें जानता है वह हमारी आराधना भी करता है। "आसक्ति से रहित ज्ञान में स्थिर हुए चित्त वाले यज्ञ के लिये आचरण करते हुए सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं। "इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह (कुछ भी) नहीं है।

गीता में भक्तियोग - भक्तियोग मानव मन के संवेगात्मक पक्ष का पुष्ट करता है। भक्ति 'भज' से बना है। 'भज' का अर्थ है ईश्वर सेवा। इसीलिये भक्ति का अर्थ अपने को ईश्वर के प्रति समर्पण करना कहा जाता है। भक्ति के लिए ईश्वर में व्यक्तित्व का रहना आवश्यक है। निर्गुण और निराकार ईश्वर हमारी पुकार को सुनने में असमर्थ रहता है। गीता में ईश्वर को प्रेम के रूप में चित्रण किया गया है। जो ईश्वर के प्रति प्रेम, आत्म-समर्पण, भक्ति रखता है उसे ईश्वर प्यार करता है। भक्त जो कुछ शुद्ध मन से ईश्वर के प्रति अर्पण करता है, उसे ईश्वर स्वीकार करता है। गीता में भगवान ने स्वयं कहा है- "पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से अर्पण करता है। उस भक्तजन का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ सब कुछ मैं बड़े प्रेम से खाता हूँ।

गीता में चार प्रकार के भक्तों को स्वीकारा गया है- भगवान ने स्वयं कहा है।

“चतुर्विधा भजन्ते माँ जनाः”⁴ अर्थात् चार प्रकार के भक्त जन मुझे भजते हैं। यह चार प्रकार के भक्त इस प्रकार हैं-

- 1) आर्त - रोग से पीड़ित व्यक्ति अपने रोग निवारण हेतु ईश्वर भक्ति करता है ऐसे भक्त को आर्त भक्त कहा जाता है।
- 2) जिज्ञासु- जो भक्त ज्ञान पाने की इच्छा रखते हैं वह जिज्ञासु कहलाते हैं।
- 3) अर्थार्थी - अर्थार्थी ऐसे भक्त को कहा गया है जो ईश्वर की वन्दना द्रव्यादि अर्थात् सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति के उद्देश्य से करते हैं।
- 4) ज्ञानी - ज्ञानी उस भक्त को कहा गया है जो परमेश्वर का ज्ञान पाकर कृतार्थ हो जाता है। ज्ञानी भक्त निष्काम बुद्धि से भक्ति करते हैं। जबकि अन्य तीन प्रकार के भक्त सकाम भाव से भक्ति करते हैं।

गीता में बार-बार ज्ञानी भक्त की महिमा की चर्चा हुई है। वह भक्तों की कोटि में श्रेष्ठतम है भगवान ने कहा है कि - “ज्ञानी विशिष्यते”⁵ अर्थात् ज्ञानी भक्त अति उत्तम है। “ज्ञानिनः अहम् अत्यर्थम् प्रियः च सः मम प्रियः”⁶ ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मेरे को (अत्यन्त) प्रिय है। “ज्ञानी त्वात्मैव”⁷ अर्थात् ज्ञानी तो मेरा स्वरूप ही है। “सः महात्मा सुदुर्लभः”⁸ अर्थात्:- आत्मा अति दुर्लभ है। गीता में ज्ञान और भक्ति में निकटता का सम्बन्ध दर्शाया गया है। यहाँ ज्ञान में ही भक्ति तथा भक्ति में ही ज्ञान को गूँथ दिया गया है। इसके कारण यहाँ ज्ञान और भक्ति के परस्पर विरोध नहीं दिखता है। परमेश्वर के ज्ञान के साथ ही प्रेम रस की अनुभूति होने लगती है।

गीता में कर्मयोग : कर्मयोग का सबसे पहला शब्द ‘कर्म’ है। ‘कर्म’ शब्द ‘कृ’ धातु से बना है, उसका अर्थ ‘करना, व्यापार, हलचल’ होता है और इसी सामान्य अर्थ में गीता में उसका उपयोग हुआ है, अर्थात् यही अर्थ गीता में विवक्षित है। ऐसा कहने का कारण यही है कि मीमांसाशास्त्र में और अन्य स्थानों पर भी इस शब्द के जो संकुचित अर्थ दिए गए हैं, गीता का मुख्य उपदेश कर्मयोग कहा जा सकता है। गीता की रचना निष्क्रिय और किंकर्तव्यविमूढ अर्जुन को कर्म के प्रति मोहित कराने के उद्देश्य से की गई। यही कारण है कि गीता में श्री कृष्ण निरन्तर कर्म करने का आदेश देते हैं। अतः गीता का मुख्य

⁴ श्रीमद्भगवद्गीता 7/16

⁵ श्रीमद्भगवद्गीता 7/17

⁶ श्रीमद्भगवद्गीता 7/17

⁷ श्रीमद्भगवद्गीता 7/18

⁸ श्रीमद्भगवद्गीता 7/19

विषय कर्म-योग ही कहा जा सकता है। कर्म का अर्थ आचरण है। उचित कर्म से ईश्वर को अपनाया जा सकता है। ईश्वर स्वयं कर्मठ है। इसीलिये ईश्वर तक पहुँचने के लिये कर्म-योग आवश्यक है। शुभ कर्म वह है जो ईश्वर की एकता का ज्ञान दे। अशुभ कर्म वह है जिसका आधार अवास्तविक वस्तु है। गीता के समय शुद्धाचरण के अनेक विचार प्रचलित थे। वैदिक-कर्म के अनुसार मानव वैदिक कर्मों के द्वारा अपने आचरण को शुद्ध कर सकता है। उपनिषद् में कर्म को सत्य प्राप्ति में सहायक कहा गया है। गीता में सत्य की प्राप्ति के लिए कर्म को करने का आदेश दिया गया है। वह कर्म जो असत्य तथा अधर्म की प्राप्ति के लिए किया जाता है, सफल कर्म नहीं कहा जा सकता है। कर्म को अन्धविश्वास और अज्ञान वश नहीं करना चाहिए कर्म को इसके विपरीत ज्ञान और विश्वास के साथ करना चाहिए गीता में मानव को कर्म करने का आदेश दिया गया है। गीता में निष्काम कर्म का अर्थ है, कर्म को बिना किसी फल की अभिलाषा से करना। जो कर्मफल को छोड़ देता है वही वास्तविक त्यागी है इसीलिये भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि-

“कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥”⁹

अर्थात् कर्तव्य-कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, फलों में कभी नहीं। अतः तू कर्मफल के हेतु भी मत बन और तेरी अकर्मण्यता में भी आसक्ति न हो। गीता का प्रतिपाद्य विषय ही निष्काम कर्म-योग है, जिसे कर्म-योग की भी संज्ञा दी जाती है। भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि आसक्ति रहित होकर कर्म करना चाहिए भले ही कार्य में सफलता मिले या असफलता दोनों में समता की जो मनोवृत्ति है उसे ही कर्म-योग कहते हैं-□“योगस्थः कुरु कर्माणि संगत्यक्त्वा धनञ्जय । सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वयोग उच्यते ॥” अर्थात् हे धनञ्जय ! तू आसक्ति को त्याग करके सिद्धि-असिद्धि में सम् होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर; क्योंकि समत्व ही योग कहा जाता है। फिर आगे कहते हैं कि-

“बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥”¹⁰

अर्थात् बुद्धि (समता) से युक्त मनुष्य यहाँ जीवित अवस्था में ही पुण्य और पाप दोनों का त्याग कर देता है। अतः तू योग-(समता) में लग जा, क्योंकि योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात्:- समत्व बुद्धि रूप योग ही कर्मों में चतुरता है अर्थात् कर्म बन्धन से छूटने का उपाय है। योगः कर्मसु कौशलम्-कर्म-

⁹ श्रीमद्भगवद्गीता 2/47

¹⁰ श्रीमद्भगवद्गीता 2/50

कौशल या उत्कृष्ट कर्मनिष्ठा ही योग है। योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्तत्वात्मशुद्धये-योगी वह है जो आत्माशुद्धि के लिए मोहासक्ति छोड़कर कर्म करता है। नैव किञ्चित्करोमीति युक्ति मन्येत तत्त्ववित् तत्त्ववेत्ता जानता है कि आत्मासत्ता स्वयं स्थूल कर्म नहीं करती, कर्म तो इन्द्रियादिक द्वारा आत्मचेतना की उपस्थिति में सम्पन्न हो रहे हैं अतः उनमें सफलता विफलता से असन्तुलित हो उठने जैसे कोई बात नहीं। योगयुक्तो विशुद्धात्मा-योगयुक्त व्यक्ति की आत्मसत्ता विशुद्ध प्रखर हो जाती है। समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवप्स्यसि-समाधि स्थिति की तरह स्थिर, अविचल बुद्धि होने पर ही योगस्थिति प्राप्त होती है। इसीलिए अर्जुन को समत्व बुद्धि-योग के लिए ही चेष्टा करने का आदेश दिया गया है। “हे अर्जुन! जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है वह श्रेष्ठ है।” अर्जुन के यह पूछने पर कि कर्मा के सन्यास और निष्काम कर्मयोग में कौन सा उत्तम और कल्याणी है। इस पर भगवान श्री कृष्ण कहते हैं-

“सन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।

तयोस्तु कर्मसन्यासात्कर्मयोगोविशिष्यते।”¹¹

अर्थात् कर्मा का सन्यास और निष्काम कर्म योग यह दोनों ही परम् कल्याण करने वाले हैं परन्तु उन दोनों में भी कर्मा के सन्यास से निष्काम कर्मयोग श्रेष्ठ है। निष्काम कर्मयोग की महिमा का उल्लेख गीता में इस प्रकार किया है- “सन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः। योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।।” परन्तु हे महाबाहो ! कर्मयोग के बिना सन्यास सिद्ध होना कठिन है। मननशील कर्मयोगी शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। गीता की रचना यह प्रमाणित करती है कि सम्पूर्ण गीता कर्तव्य के लिए मानव को प्रेरित करती है। परन्तु निष्काम कर्म भाव अर्थात् फल प्राप्ति की भावना का त्याग करके करना ही परमावश्यक है। अर्थात् गीता कर्मा के त्याग के बदले कर्म में त्याग का उपदेश देती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कर्मयोग ही गीता का मुख्य उपदेश है। सकाम कर्म मानव को बनधन की ओर ले जाते हैं परन्तु निष्काम कर्म करके इसके विपरीत मानव को स्थितप्रज्ञ की अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम सिद्ध होते हैं। गीता में बार-बार दोहराया गया है कि कर्म से सन्यास न लेकर कर्म के फलों से सन्यास लेना चाहिए। कर्म का प्रेरक फल नहीं होना चाहिए। यद्यपि गीता कर्मफल के त्याग का आदेश देती है फिर भी गीता का लक्ष्य त्याग या सन्यास नहीं है। इन्द्रियों का दमन करने का आदेश नहीं दिया गया है बल्कि उन्हें विवेक के मार्ग पर नियन्त्रित करने का आदेश दिया गया है। निष्काम कर्म की शिक्षा गीता की अनमोल देन है।

¹¹ श्रीमद्भगवद्गीता 5/2

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति का अनुपम समन्वय है। ईश्वर को ज्ञान से भी अपनाया जा सकता है, कर्म से भी अपनाया जा सकता है तथा भक्ति से भी अपनाया जा सकता है। जिस व्यक्ति को जो मार्ग सुलभ हो वह उसी मार्ग को चुनकर ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। ईश्वर में सत्, चित् और आनन्द है। जो ईश्वर को ज्ञान से प्राप्त करता है उसके लिये वह प्रकाश है, जो ईश्वर को कर्म के द्वारा पाना चाहते हैं उसके लिये वह शुभ है, जो भावना से अपनाया चाहते हैं उसके लिए वह प्रेम है। इस प्रकार तीनों मार्गों से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। जिसे विभिन्न रास्तों से एक लक्ष्य पर पहुँचा जा सकता है उसी प्रकार विभिन्न मार्गों से ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है। मधुसूदना सरस्वती ने अन्य टिप्पणीकारों प्रत्येक श्रीमद्भगवद्गीता को तीन वर्गों में विभाजित किया है, जहाँ प्रथम छह अध्यायों में कर्म योग के बारे में, बीच के छह में भक्ति योग और पिछले छह अध्यायों में ज्ञान (ज्ञान) योग के बारे में गया है।

उपसंहार

श्रीमद्भगवद्गीता में योग और योगी के स्वरूप का जहाँ कहीं भी उल्लेख हुआ है, वही योग के ऐसे ही लक्षणों का संकेत-निर्देश हुआ है, जो आत्मचेतना की ब्रह्मचेतना से जोड़ने पर आनन्द-उल्लास सक्रियता-स्फूर्त, कर्मनिष्ठा-चरित्रनिष्ठा के रूप में प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। साधक के व्यक्तित्व में उस प्रकाश की ये अभिव्यक्तियाँ ही योग सफलता के चिन्ह हैं। इसी तथ्य को गीता में भिन्न-भिन्न ढंग से प्रतिपादित किया गया है, यथा-समत्वं योग उच्यते, अर्थात् समत्व बुद्धि सुसन्तुलित मनःस्थिति ही योग है। एक ऐसा उपाय है जिसके द्वारा हम अपने साधारण मानसिक क्लेशों एवं जीवन की अन्यान्य कठिनाइयों का बहुत सुविधापूर्वक निराकरण कर सकते हैं। हमारे अन्दर मृग के कस्तूरी के समान रहने वाली जीवात्मा एक ओर मन की चंचल चित्तवृत्तियों द्वारा उसे ओर खींची जाती है और दूसरी ओर परमात्मा उसे अपनी ओर बुलाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्री ओमानन्द स्वामी तीर्थ, पातञ्जल योग प्रदीप, गीताप्रेस गोरखपुर।
2. श्रीमद्भगवद्गीता शांकर भाष्य -इकतीसवां पुनर्मुद्रित, गीताप्रेस गोरखपुर सं. 2069।
3. श्रीमद्भगवद्गीता पचहत्तरहवां पुनर्मुद्रित, गीताप्रेस गोरखपुर सं. 2073।
4. वैदिकयोगसूत्र, हरिशंकर जोशी .प्रथम संस्करण .चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी वि.सं. 2024।
5. योग वाशिष्ठ पुनर्मुद्रण अठ्ठा अठ्ठाइसवा संस्करण गीताप्रेस गोरखपुर वि.सं. 2073।

-
6. श्री मद्भगवद्गीता.,भाष्यकार डॉ सम्पूर्णा नन्द सरस्वती ,प्रथम संस्करण संस्कृत अकादमी दिल्ली 2013|
 7. गीता-दिग्दर्शन ,सुधाकर तिवारी, प्रथम संस्करण, प्रतिभा प्रकाशन ,दिल्ली 2014|
 8. श्री मद्भगवद्गीता.,मधुसूदन सरस्वती ,विरचित सम्पादक - वाचस्पति द्विवेदी, प्रथम संस्करण चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी 2013 |
 9. कल्याण योगांक .बारहवाँ पुनर्मुद्रण ,गीता प्रेस गोरखपुर सं 2072|
 10. योगदर्शन : काव्य लक्षण ,.विद्यासागर वर्मा 'मुमुक्षु ' द्वितीय संस्करण ,राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली 2008|